लोकधर्मिता, सीमांत की राजनीति व काँवड़ सेवा समितियाँ

नरेश गोस्वामी

यह आलेख काँवड़ की तीर्थयात्रा का संक्षिप्त वृत्तांत होने के साथ यात्रा के बाहर खड़ी ग़ैर-धार्मिक प्रक्रियाओं का क्षिप्र अवलोकन भी है। लेख में दो अलग-अलग दिखती चीज़ों को एक साथ रखकर देखने का प्रयास किया गया है। इस युक्ति का उद्देश्य एक तरफ़ काँवड़ के श्रद्धालुओं का लोक आयत्त करना है, और दूसरी तरफ़ उसके आयोजन में लगी व्यवस्था के ढाँचे को उजागर करना है। इस लेख के उपशीर्षक में तीन अभिव्यक्तियों— लोकधर्मिता, सीमांत की राजनीति और काँवड़ सेवा समितियाँ का सचेत प्रयोग किया गया है ताकि काँवड़-परिघटना के कुछ ख़ास पहलुओं पर एकमुश्त विचार किया जा सके।

दिल्ली के कश्मीरी गेट बस अड्डे पर जब मैं हरिद्वार जाने वाली बसें टोह रहा था तो उसमें यह उम्मीद भी शामिल थी कि अगर कुछ काँवड़ियों का साथ यहीं से मिल जाए तो उनके नज़दीक आने और उनकी दुनिया में झाँकने का काम ज़्यादा आसानी से किया जा सकेगा। आस-पास खड़ी और आती-जाती बसों पर नज़र दौड़ाने के बाद जब मैंने एक बस पर कई काँवड़ें बँधी देखी3 और काँवड़ियों को आसपास टहलते पाया तो एकबारगी इस संयोग पर अचरज सा हुआ। पर थोड़ी ही देर बाद पता चला कि इन दिनों यह अचरज की नहीं बल्कि सामान्य बात है। बस में काँवड़ियों के पास जगह लेने के बाद उनसे पता चला कि असल में काँवड़ की तैयारी के इन दिनों में राजस्थान के काँवड़िये दिल्ली के रास्ते हरिद्वार जाने का कार्यक्रम बनाते हैं। काँवड़ियों के इस समूह में पाँच युवक थे। इनमें तीन अलवर के रास्ते में पड़ने वाले क़स्बे बहरोड़ से और दो लोग हरियाणा के धारूहेड़ा क़स्बे के रहने वाले थे। आपस में उनका परिचय दिल्ली आते हुए हुआ था। बात शुरू करने के लिए मैंने उन्हें पहले अपने बारे में बताया कि मैं काँवड़ पर शोध कर रहा हूँ। उन्हें यह बात शायद दिलचस्प लगी कि कोई आदमी काँवड़ पर भी अनुसंधान कर सकता है। इसलिए शुरुआती दौर में मेरे सवाल कम रहे और उनके ज़्यादा। उन्होंने यह भी जानना चाहा कि इस शोध की क्या उपयोगिता होगी। बहरहाल, आख़िर तक वे मुझे पत्रकार समझते रहे। बहरोड़ के तीन युवकों में दो क़स्बे की दुकानों में काम करते थे और तीसरा अभी बेरोज़गार था और दिल्ली में नौकरी की तलाश कर रहा था।

धारूहेड़ा वाले दोनों युवक बिजली के मिस्त्री यानी इलेक्ट्रीशियन थे। एक का विवाह हो चुका था और दूसरा अविवाहित था। दोनों कई सालों से छिटपुट काम करते आ रहे थे। दोनों बिजली का सामान बेचने वाले एक बड़े दुकानदार के यहाँ नौकरी करते थे। घरों में वायरिंग करने के अलावा वे इस्तरी और मिक्सर-ग्राइंडर को भी ठीक करना जानते थे। पर दोनों का कहना था कि कोई पक्का काम हाथ नहीं लग रहा है। अविवाहित युवक का एक दुख यह भी था कि काम न जम पाने के कारण उसकी शादी भी नहीं हो रही है।

हरिद्वार पहुँचने पर जब यह बात हुई कि कौन कहाँ ठहरेगा तो मुझे आश्चर्य हुआ कि समूह के सारे काँवड़ियों ने अपने ठहरने के लिए धर्मशालाओं में पहले ही इंतज़ाम कर लिया था। पता चला कि हरिद्वार में उनकी जातियों की धर्मशालाएँ हैं जहाँ उनके कुछ साथी काँवड़िये पहले ही पहुँच चुके हैं। उन्होंने मुझे भी एक ऐसी ही धर्मशाला में ठहराने की बात कही। मैं उनके साथ ठहरना तो नहीं चाहता था लेकिन उनका ठिया-ठिकाना ज़रूर जानना चाहता था ताकि उनसे सम्पर्क करने में सहूलियत रहे। हरिद्वार में हमारे पास तीन दिन थे, और दिन का समय मैं उनके साथ गुज़ारना चाहता था ताकि उनकी भीतरी दुनिया, इच्छाओं और सोच-समझ से परिचित हो सकूँ।

इन काँवड़ियों के साथ हरिद्वार में बिताये तीन दिन मनसा और चण्डी देवी के मंदिरों के दर्शन और हर की पैड़ी पर हर शाम आयोजित होने वाली आरती के नाम रहे। काँवड़िये स्थानीय दुकानदारों की लुटेरी मानसिकता को लेकर ख़ासे कुपित थे। एक का कहना था कि ये साले पूरे साल का पैसा इन्हीं पंद्रह दिनों में कमा लेते हैं। दूसरे ने कहा, 'उत्तराखण्ड बनने के बाद पहाड़ियों के भाग (भाग्य) सुधर गये हैं। वरना पहले कच्ची पीकर (देशी शराब) धुत्त पड़े रहते थे।' वैसे दिलचस्प बात यह है कि दुकान के साइनबोर्डों पर कोई एकाध नाम ही उत्तराँचली दिखाई दे रहा था।

बाज़ार में घूमते, शुद्ध वैष्णव भोजनालय में खाना खाते और चण्डी देवी की चढ़ाई चढ़ते समय साथी काँवड़िये मोटर साइकिलों के नये मॉडलों और उनके माइलेज, किसी साथी का काम अचानक अच्छा हो जाने, घर के किसी आदमी की नसों का दर्द हरिद्वार के एक साधु की पुड़िया से ठीक हो जाने या ग्राम पंचायत के चुनाव में प्रधान का पद महिलाओं के लिए आरक्षित हो जाने के बाद राममेहर नामक किसी परिचित की पत्नी के प्रधान बन जाने जैसी बातें करते रहे। तीसरे दिन गंगा की आरती

के बाद हर की पैड़ी पर बैठे हुए मैंने अपने साथी काँवड़ियों से पूछा कि आख़िर वह कौन सी चीज़ है जो यात्रा के कष्टों, काम छोड़कर आने की मजबूरी और ख़र्चे के बावजूद आपको काँवड़ लाने के लिए प्रेरित करती है। मेरे इस प्रश्न पर थोड़ी देर के लिए चुप्पी छा गयी। शायद काँवड़िये अपने भीतर इसका जवाब टटोल रहे थे। पहल धारूहेड़ा वाले वरिष्ठ इलेक्ट्रीशियन ने की :

> मैं अपनी कहूँ तो पिछले पाँच साल से अपना काम शुरू करने की कोशिश कर रहा हूँ। पर अब तक बात नहीं बन पायी। चार साल पहले शादी हो गयी थी। तीन साल तक बच्चा नहीं हो सका। मतलब हर बार यह हुआ कि तीन-चार महीने बाद गिर जाता था। इलाज-फिलाज ख़ूब कराया। पर हुआ कुछ नहीं। सारे घरवाले परेशान थे। तब एक रिश्तेदार ने सुझाया कि काँवड़ बोल दो और फिर देखना कि तुम्हारी बात है या नहीं। बस एक दिन मंदिर में जा कर शिवजी की पिण्डी के आगे दरख़ासे (दरख़्वास्त) लगाई कि भोले बाबा एक बार बालक का मुँह दिखा दो तो सात बार काँवड़ लाऊँगा। आपको यक़ीन नहीं होगा, पर उसी साल मेरी घरवाली को बच्चा हुआ। तब से भोले बाबा में मेरा यक़ीन पक्का हो गया। इस बार दुबारा काँवड़ लेने आया हूँ। ... जैसे बालक का काम हुआ वैसे ही काम-धंधा भी जमवावैगा शिवजी महाराज।

इलेक्ट्रीशियन जब यह सब बता रहा था तो साथ बैठे काँवड़िये कभी समर्थन तो कभी अनुमोदन में सिर हिला रहे थे। उसकी बात ख़त्म होते ही एक अन्य काँवड़िये ने मौज में आते हुए कहा, 'अजी सच्ची बात तो या है अक (कि) हमैं तो शिवजी महाराज अपणे जैसा आदमी लगै। वो ज़्यादा टीम-टाम में भी ना पड़ता ...।' इस पर सारे काँवड़ियों में एक ज़बरदस्त ठहाका गूँज उठा।

▣▣▣

काँवड़ की यह तीर्थयात्रा पिछले दो दशकों के दौरान उत्तर भारत के एक बड़े क्षेत्र में व्यापक जन परिघटना के रूप में सामने आयी है। यह यात्रा ख़ासे विस्तृत भौगोलिक दायरे— पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा और उसके सीमावर्ती राजस्थान में घटित होती है। एक अनुमान के अनुसार 2004 में लगभग साठ लाख लोग काँवड़ की यात्रा पर गये थे।[1] वैसे तो काँवड़ लाने की परम्परा पौराणिक काल तक जाती है, परंतु एक सामाजिक परिघटना के रूप में इसका उदय नवें दशक की बात है। डेढ़-दो दशक पहले तक काँवड़ एक अल्पज्ञात आस्था थी। इस समय एक औसत काँवड़िया अपनी आस्था के आंतरिक संसार में खोया शहर की किसी सड़क से चुपचाप गुज़र जाता था।[2] इस तरह यह यात्रा एक व्यक्तिगत प्रयास हुआ करती थी और सामाजिक रूप से कोई दृश्य पैदा नहीं करती थी। लेकिन इसके बाद काँवड़ एक बहुस्तरीय घटना बन चुकी है। अब वह एक व्यक्ति की नहीं बल्कि समूह की गतिविधि बन गयीं है जिसमें सिर्फ़ श्रद्धालु प्रमुख पात्र नहीं रह गये हैं। इसके आयोजन में स्थानीय नेता, परम्परागत अभिजनों से लेकर नवधनिक वर्ग तथा व्यावसायिक समूह भी शामिल हो गये हैं। आज यह यात्रा स्वत:स्फूर्त आस्था से बढ़ कर एक नियंत्रित प्रदर्शन बन चुकी है।

काँवड़ के पूरे परिदृश्य का पिछले दो दशकों के आर्थिक-तकनीकी बदलावों से गहन संबंध है। इस क्रम में पहले अर्थतंत्र में आये बदलावों पर एक नज़र डालने से हमें काँवड़ की पृष्ठभूमि को समझने में मदद मिलेगी। नवें दशक में बाज़ार-अर्थव्यवस्था लागू होने से कई तरह के रोज़गारों का

---

[1] पूर्णिमा एस. त्रिपाठी (2004), 'द लोंग वॉक फ़ॉर वर्शिप', *फ्रंटलाइन,* अंक 17, 14-27 अगस्त.

[2] नवें दशक से पहले काँवड़ की लोकप्रियता का जायज़ा लेने के लिए हमने पचास से साठ साल के आयु वर्ग के दस व्यक्तियों से अनौपचारिक बातचीत की. प्रस्तुत अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों में लोगों से बात करने पर यह पता चलता है कि सन् नब्बे से पहले काँवड़ संगठित यात्रा नहीं थी. उस समय काँवड़ ऐसे लोग लाते थे जिनकी मनोकामना पूरी हो जाती थी. सूचनादाताओं के अनुसार यात्रा में युवाओं की भागीदारी और भूमिका में नवें दशक के बाद ज़्यादा वृद्धि हुई है.

सृजन हुआ है। जिसका उत्तर भारत के देहात पर इस रूप में असर देखा जा सकता है कि जो ग़ैर-खेतिहर जाति-समूह जीविका के लिए गाँव की अर्थव्यवस्था पर निर्भर करते थे अब पड़ोसी शहरों और कस्बों में जाकर जीविका अर्जित करने लगे हैं।[3] इस बीच खेती की ज़मीन के बँटवारे और जोत का आकार घटने के कारण खेतिहर समूह भी दिल्ली जैसे महानगरों का रुख करने लगे हैं। पिछले तीन दशकों पर निगाह डालें तो दिल्ली की जनसंख्या और भौगोलिक विस्तार में हरियाणा, राजस्थान, बिहार और उत्तरप्रदेश से आने वाले विस्थापितों की संख्या सबसे उल्लेखनीय रही है।[4]

खुले बाज़ार की इस अर्थव्यवस्था में तकनीक के नये रूप और उपकरण व्यापक स्तर पर जनसुलभ हुए हैं। इस संबंध में थोड़ा पीछे जाएँ तो उत्तरभारत में आठवें दशक की शुरुआत में कैसेट संस्कृति के उदय को रेखांकित किया जा सकता है। इस दौर में टी-सीरिज़ तथा चंदा जैसी ऑडियो उत्पादक कम्पनियाँ स्थानीय लोक-संगीत का व्यावसायिक उत्पादन करने लगी थीं। कैसेट की इस संस्कृति में क्षेत्रीयता और आंचलिकता की प्रवृत्ति इतनी प्रबल थी कि नवें दशक तक आते-आते संगीत उद्योग में लोक-संगीत की विभिन्न विधाओं, भक्ति संगीत तथा ग़ैर-फ़िल्मी संगीत का हिस्सा चालीस से साठ फ़ीसद पहुँच चुका था।[5] यह एक तरह से उस प्रक्रिया की शुरुआत थी जिसमें स्थानीय संस्कृति और समाज को उनकी भौगोलिकता के बाहर ले जाकर एक यांत्रिक और सर्वसुलभ विन्यास दिया जा सकता था। स्थानीय संस्कृति के उद्योग में लगी ये कैसेट कम्पनियाँ लोक-संगीत की विभिन्न शैलियों और विधाओं के कलाकारों के ज़रिये लोक-कला और लोक-आख्यानों को अवसर विशेष पर प्रस्तुत किये जाने की सीमाओं से मुक्त कर रही थी। लिहाज़ा तकनीक का यह प्रसार समाज में उन क़िस्सों और आख्यानों को पुन: लोकप्रिय बनाने लगा था जो धीरे-धीरे लोक स्मृति के हाशिए पर जाने लगे थे। इस तरह आठवें दशक की शुरुआत में संगीत के लोक-रूपों के लिए एक बाज़ार तैयार हो चुका था। यह एक विशिष्ट परिवर्तन था जिसमें यांत्रिक पुनरुत्पादन के ज़रिए स्थानीय समाज की लोक-कलाएँ मौजूदा मंचों और माध्यमों के अलावा अपने संरक्षण और विस्तार के लिए तकनीक का सहारा ले रही थी। संक्षेप में कहा जाए तो यह एक ऐसा क्षण था जिसमें लोक-परम्परा बाज़ार के लिए उपयोगी साबित होने लगी थी और स्थानिक संस्कृति के विभिन्न रूपों— संगीत, धार्मिक आख्यानों आदि के लिए कलाकारों, प्रयोगकर्ताओं तथा उत्पादकों आदि को बाज़ार से जुड़ने का अवसर मिलने लगा था। बाज़ार के फैलाव से लोक का यह सीमांत दृश्यमान तो होने लगा था लेकिन इससे मुख्यधारा की सांस्कृतिक परम्पराओं और स्थानिक संस्कृति के बीच सत्ता का द्वंद्व समाप्त नहीं हो गया था।

काँवड़ का जन-परिघटना बनना पिछले तीन दशकों में निरंतर मज़बूत हुई सचेत धार्मिकीकरण की प्रक्रिया से भी जुड़ा है। इस काल में धर्म के लोक-वृत्त में दो प्रवृत्तियाँ विशेष रूप से उभरी हैं जिन्हें धर्म की सार्वजनिक अभिव्यक्ति के विस्तार तथा धार्मिक संरचनाओं के सेकुलर क्षेत्रों में प्रवेश रूप में समझा जा सकता है। नवें दशक में धर्म के लोक-वृत्त और बाज़ार तथा राजनीति के बीच एक त्रिकोणीय आवाजाही शुरू हुई । इस समय हिंदुत्ववादी राजनीति और भूमण्डलीकरण एक साथ उभर रहे थे। विश्व हिंदू परिषद कई दशकों से हिंदू धर्म के लोक-वृत्त में संघवादी प्रवृत्तियों को रोपने का काम कर रही थी।

---

[3] सतेंद्र कुमार, 'रूरल ट्रांसफ़ॅरमेशन एंड ऑक्यूपेशनल डायवर्सिफ़िकेशन इन वेस्टर्न उत्तरप्रदेश : इकनॉमिक ऐंड डेमोग्राफ़िक चेंजेज़ इन ए विलेज', रोज़र जैफ्री, क्रेग जैफ्री एवं जेन्स लर्चे (सम्पा.), *डिवेलपमेंट फेल्योर ऐंड आइडेंटिटी पॉलिटिक्स इन उत्तर प्रदेश,* सेज, दिल्ली, शीघ्र प्रकाश्य.

[4] जॉन हैरिस (2005), 'पॉलिटिकल पार्टिसिपेशन, रिप्रज़ेंटेशन ऐंड द अरबन पुअर : फ़ाइंडिंग्ज़ फ्रॉम रिसर्च इन डेलही', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली ऑफ़ इण्डिया,* अंक 40.

[5] पीटर मैनुएल (1993), *कैसेट कल्चर,* ऑक्सफ़ॅर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली : 63.

इस समय हिंदू धर्म के संघवादीकरण की परियोजना अपने चरम पर थी।[6] हिंदू धर्म के लोक-वृत्त में समागम की यह बढ़ती प्रवृत्ति तब तक सम्भव नहीं हो सकती थी जब तक धार्मिक परम्पराओं का एकरूपीकरण न हो जाता। यानी (धर्म) के मेलों-ठेलों, उत्सवों और तीज-त्योहारों का परम्परा और स्थानिकता से रिश्ता न टूटता।[7] इस अर्थ में काँवड़ को राजनीतिक शक्तियों द्वारा परिचालित धर्मसंघवादी बंदोबस्त का अनिच्छित प्रभाव भी माना जा सकता है।

डेढ़-दो दशक पहले तक काँवड़ एक अल्पज्ञात आस्था थी। इस समय एक औसत काँवड़िया अपनी आस्था के आंतरिक संसार में खोया शहर की किसी सड़क से चुपचाप गुज़र जाता था। इस तरह यह यात्रा एक व्यक्तिगत प्रयास हुआ करती थी और सामाजिक रूप से कोई दृश्य पैदा नहीं करती थी। लेकिन इसके बाद काँवड़ एक बहुस्तरीय घटना बन चुकी है। अब वह एक व्यक्ति की नहीं बल्कि समूह की गतिविधि है जिसमें सिर्फ़ श्रद्धालु प्रमुख पात्र नहीं रह गये हैं।

[6] हिंदू धर्म के संघवादीकरण से हमारा तात्पर्य यहाँ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसके सहोदर संगठनों द्वारा हिंदू धर्म की आस्थागत और स्वरूपगत बहुलताओं को एकाश्मिक रूप देने से है. सांस्कृतिक प्रतीकों और समाज सेवा आदि के ज़रिये संघ शुरू से ही हिंदू राष्ट्र की परियोजना के लिए हिंदू धर्म को एकाश्मिक रूप देने के लिए सक्रिय रहा है. आठवें दशक के मध्य में शुरू हुए और बाबरी मसजिद के विध्वंस तक फैले राम जन्मभूमि आंदोलन की लामबंदी के पीछे संघ के दो संगठनों विश्व हिंदू परिषद तथा बजरंग दल की विशेष भूमिका रही थी. प्रभाष जोशी काँवड़ के उभार को धार्मिक निष्ठाओं का सार्वजनिक प्रदर्शन मानते हुए काँवड़ियों में प्रदर्शन की इच्छा और उनकी सामूहिक आक्रामकता को मुसलमानों, सिखों और ईसाइयों के व्यवहार की प्रतिक्रिया से जोड़ कर देखते हैं. देखें, प्रभाष जोशी (2003), *हिंदू होने का धर्म,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली : 197-198. ग़ौरतलब है कि प्रभाष जोशी काँवड़ के आयोजन के पीछे किसी हिंदू संगठन की निशानदेही नहीं करते लेकिन जब वे इसे प्रतिक्रिया कहते हैं तो उनका तर्क हिंदुत्ववादी आंदोलन के बृहत्तर विमर्श से जुड़ जाता है. इस संबंध में हमारा विचार है कि राम जन्मभूमि आंदोलन से उपजा आलोड़न तभी से हिंदू धर्म के त्योहारों, पर्वों और सांस्कृतिक गतिविधियों को प्रभावित करने के लिए व्यवस्थित प्रयास करता रहा है. मसलन जनवरी, 1992 के गंगा मेले में विश्व हिंदू परिषद ने अयोध्या में कार सेवकों के कथित बलिदान की याद में एकता यात्रा तथा भोग का आयोजन किया था. हालाँकि यह अलग बात है कि मेले में शामिल अधिकांश साधुओं और पुजारियों ने इस धार्मिक लामबंदी का बहिष्कार कर दिया था. (देखें, रुस्तम भड़ूचा (1993), *अ क्वेश्चन ऑफ़ फ़ेथ,* ऑरिएंट लांगमैन, नयी दिल्ली : 22-23). दिल्ली स्थित धर्म यात्रा महासंघ भी एक ऐसा ही संगठन है जो सिंधु दर्शन और कैलाश मानसरोवर यात्रा से लेकर काँवड़ के आयोजन में सक्रिय भूमिका निभाता है.

[7] अभय कुमार दुबे (2008), 'एक धर्मप्राण देश का धर्मसंकट', *राष्ट्रीय सहारा,* 16 सितम्बर.

◙◙◙

प्रस्तुत लेख की महत्त्वाकांक्षा सीमित है। यहाँ हमने अपने अध्ययन-क्षेत्र की दो काँवड़ सेवा समितियों को आधार बनाकर राजनीतिक प्रतिनिधित्व व नागरिक संस्थाओं के सीमांत पर सक्रिय अनौपचारिक राजनीति समझने की कोशिश है।

प्रस्तुत शोध 2005 तथा 2007 में काँवड़ यात्रा शुरू होने के एक सप्ताह पहले और यात्रा की अवधि के दौरान अध्ययन में शामिल क्षेत्रों के विभिन्न शिविरों और काँवड़ आयोजन समिति के कार्यकर्ताओं के घर जाकर किया गया था। दिल्ली में काँवड़-यात्रा के लिए शिविर लगाने का काम यात्रा शुरू होने से लगभग दस-पंद्रह दिन पहले आरम्भ हो जाता है। समिति के कार्यकर्ताओं तथा पदाधिकारियों से मिलने के लिए यह समय सबसे उपयुक्त होता है। इस दौरान शिविर का निरीक्षण करने के लिए आयोजन समिति का कोई न कोई सदस्य ज़रूर उपस्थित रहता है। शिविर में सुविधाएँ और सामान जुटाने के लिए इस समय स्थानीय प्रशासन और काँवड़ समिति के बीच बातचीत और सम्पर्क चलता रहता है। उल्लेखनीय है कि इस स्तर पर काँवड़ का प्रबंधन पक्ष ही सक्रिय रहता है। लिहाज़ा प्रस्तुत अध्ययन के लिए हमने सभी सूचनादाताओं से ऐसे शिविरों में ही सम्पर्क किया। आयोजन समिति के सदस्यों का साक्षात्कार करने के लिए हमने दो विधियों का प्रयोग किया। साक्षात्कार के पहले चरण में हमारा प्रयास यह रहता था कि बातचीत का प्रवाह मुक्त रहे और सदस्य अपने अनुभवों, समिति की गतिविधियों, स्थापना के वर्ष, समिति की प्रेरक परिस्थितियों और अपने व्यक्तिगत राजनीतिक रुझानों के बारे में बतायें। साक्षात्कार के दूसरे चरण में हम अपने पूर्व-निर्धारित प्रश्नों तथा सदस्य द्वारा दी गयी जानकारियों के आधार पर सीधे प्रश्न रखते थे।

प्रस्तुत आलेख में स्थानीय राजनीति का संदर्भ काँवड़-शिविरों के प्रबंधन और व्यवस्था तक सीमित है। ऐसा नहीं है कि इस अध्ययन से संबंधित सामाजिक समूह मुख्यधारा के राजनीतिक दलों से अपरिचित हैं या इन दलों तक उनकी कोई पहुँच नहीं है। उनका राजनीतिक जुड़ाव भाजपा से लेकर कांग्रेस तक किसी न किसी रूप में देखा जा सकता है। लेकिन स्थानीय सत्ता-तंत्र में वे एक और जगह से भी प्रवेश करते हैं। यह प्रवेश-बिंदु काँवड़ की आयोजन समितियों के बृहद् अनौपचारिक राजनीतिक दायरे में अवस्थित होता है।

दिल्ली में काँवड़ के रूट पर नज़र डालने से यह बात साफ़ दिखती है कि इसका सामाजिक भूगोल घनी आबादी वाली अनियमित बस्तियों से गुज़रता है। भौगोलिक अवस्थिति के लिहाज़ से यह अध्ययन मुख्यतः सीलमपुर, शास्त्री पार्क, भजनपुरा, यमुना विहार, मौजपुर, गोकुलपुरी तथा कांतिनगर आदि कॉलोनियों से ताल्लुक़ रखता है। यमुना पार के इस समूचे इलाक़े को दिल्ली के अनियोजित और नियंत्रित प्रसार का प्रतिनिधि उदाहरण माना जा सकता है। सँकरी, आड़ी-तिरछी गलियों और छोटे-बड़े मकानों की बेतरतीबी को इस क्षेत्र की बस्तियों का प्रारूपिक विन्यास कहा जा सकता है। पहली नज़र में बाहरी आदमी के लिए यह इलाक़ा कोई दिलचस्पी पैदा नहीं करता क्योंकि पुरानी दिल्ली के कूचों-गलियों-हवेलियों की तरह इस इलाक़े की बस्तियों का कोई विशिष्ट इतिहास या परम्परा नहीं है।

यह सारा इलाक़ा पिछले तीन-चार दशकों के दौरान विकसित हुआ है। दिल्ली में 1982 में

---

[8] अध्ययन क्षेत्र के बुज़ुर्ग लोगों से साक्षात्कार. अधिकांश सूचनादाताओं के अनुसार 1980 से पहले यह समूचा इलाक़ा काफ़ी खुला था और यहाँ थोड़ी बहुत खेती भी होती थी. बस्तियाँ बसने लगी थीं लेकिन अभी पक्की सड़कें नहीं थीं. उस समय पूरे क्षेत्र में यमुना विहार एकमात्र मध्यवर्गीय कॉलोनी थी जो अभी बसावट की प्रक्रिया से गुज़र रही थी. इसके अलावा बाक़ी रिहायशी इलाक़े में कच्ची बस्तियों की संख्या बढ़ती गयी, जिन्हें बाद में समय-समय पर नियमित किया जाता रहा.

आयोजित किये गये एशियाई खेलों से इस क्षेत्र में बसावट की प्रक्रिया में और तेजी आयी।[8] इस दौरान दिल्ली में बड़े पैमाने पर निर्माण कार्य हुआ जिसके प्रभावस्वरूप इस इलाक़े में पश्चिमी उत्तरप्रदेश, उत्तरांचल, पूर्वांचल और बिहार से राज-मिस्त्रियों, दस्तकारों और दीगर कामगारों का व्यापक स्तर पर प्रवेश हुआ। आठवें दशक के उस शुरुआती दौर में दिल्ली कुशल और अकुशल दोनों ही तरह के कामगारों के लिए अवसरों की नगरी थी। अगर प्रवासी लोगों के एक हिस्से को भवन निर्माण आदि में सीधे काम मिल जाता था तो दूसरे लोगों के लिए उनके इर्द-गिर्द चाय, पान-बीड़ी की दुकानों की सम्भावनाएँ खुल जाती थीं। आज इस इलाक़े में उस दौर की प्रवासी आबादी ही निवास करती है।

तीर्थ-यात्रा के मार्ग से काँवड़ के सामाजिक परिक्षेत्र को भी समझने में मदद मिलती है। इस यात्रा के मार्ग का बड़ा हिस्सा एक ऐसे सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक दायरे से होकर जाता है जिसमें आजीविका, हैसियत तथा सत्ता का वितरण मुख्यतः ऐसी सामाजिक शक्तियों द्वारा नियंत्रित रही है जिनका ज़मीन व आजीविका/उत्पादन के अन्य साधनों पर निर्णायक नियंत्रण रहा है। दिल्ली से सटे इस क्षेत्र में सामाजिक व राजनीतिक सत्ता मुख्यतः मध्यवर्ती किसान जातियों तथा स्थानीय वाणिज्य और व्यापार तंत्र पर नियंत्रण के चलते वैश्य समुदाय के हाथों में रही है।

दिल्ली और उसके पड़ोसी क्षेत्रों के काँवड़-तीर्थयात्री हरिद्वार में इकट्ठा होते हैं। गंगाजल लेकर वे यहीं से निकलते हैं। मेरठ तक सभी यात्रियों के लिए मार्ग अमूमन एक ही रहता है। यहाँ से यात्रियों का एक समूह हरियाणा की ओर निकल जाता है। और एक बड़ा हिस्सा दिल्ली और राजस्थान का रुख करता है। यात्रियों से सामान्य बातचीत करने से यह अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि उनका बहुलांश दिल्ली की निम्नवर्गीय और अनियमित बस्तियों से ताल्लुक़ रखता है।

▣▣▣

काँवड़ के श्रद्धालुओं का यह लोक कहाँ स्थित है? इसकी एक झलक पूर्वी दिल्ली की एक अनियोजित कॉलोनी घोंडा की कृष्णकुंज गली में देखी जा सकती है : गली के सबसे बड़े मकान अग्रवाल-कुटीर की ढलवाँ दहलीज़ पर हाथों में थालियाँ लिए कई स्त्रियाँ गीत गा रही हैं। उनके आसपास कई छोटे-बड़े बच्चे भी खड़े हैं। स्त्रियाँ पच्चीस साल के एक नौजवान की आरती उतार रही हैं। राजा नाम के इस नौजवान ने केसरिया रंग की टी-शर्ट और कैपरी पहन रखी है। टी-शर्ट पर शिव और पार्वती का चित्र और बोल बम छपा है। गली में पाँच बैंड वाले अपनी डफ़लियों, नफ़ीरी और सैक्सोफ़ोन पर 'ओम जय-जगदीश हरे' की धुन बजा रहे हैं। थालियों में अक्षत, सिंदूर और बताशों की वही पारम्परिक पूजा-सामग्री है। समूह की हर स्त्री युवक को बारी-बारी से तिलक लगाती हैं। इधर जैसे ही यह रस्म सम्पन्न होती है बैंड वाले गली से निकल कर सड़क की ओर बढ़ने लगते हैं। बैंड वालों के पीछे नौजवान और उसके पीछे स्त्रियों और बच्चों का समूह चल रहा है। इस जगह से बमुश्किल सौ मीटर दूर एक छोटा सा मंदिर दिखाई दे रहा है जिस पर शिव मंदिर लिखा है। यह समूह वहीं जा रहा है। मंदिर के सामने टी-शर्ट और कैपरी धारी ऐसे कई युवक पहले से ही जमा हैं। समूह की स्त्रियाँ मंदिर के बाहर रुक जाती हैं और युवक सीढ़ियों पर माथा टेककर मंदिर के अंदर चला जाता है। यहाँ पुजारी उसका एक बार फिर तिलक करते हैं और वह मंदिर का घंटा बजाकर नीचे उतर आता है। मंदिर से थोड़ा हटकर सड़क के किनारे एक छोटा ट्रक खड़ा हुआ है जिसे रंग-बिरंगी पन्नियों से सजाया गया है। ट्रक के ऊपर एक तिरपाल कसकर उसके नीचे की जगह को आरामदायक बना दिया गया है। ट्रक में एक जेनरेटर, और चार बड़े-बड़े म्यूज़िक कॉलम लगाये गये हैं। ट्रक पर जमाये गये इस म्यूज़िक सिस्टम पर हरियाणवी पॉप शैली का भजन भज रहा है— 'भोला न्यू मटकै, रै भोला न्यू मटकै'।

यह डाक-काँवड़ की तैयारी और प्रस्थान का एक आम दृश्य है। समूह के साथ आया युवक अपने साथियों के साथ ट्रक में बैठने की तैयारी करने लगा है। सामान की जाँच की जा रही है। इस

दौरान घर की औरतें लगातार भजन गा रही हैं। तैयारी पूरी होते ही ट्रक चल पड़ता है। और इस तरह डाक-काँवड़ की यात्रा का शुभारम्भ हो जाता है।

राजा से मेरी पहली मुलाक़ात उसकी दुकान पर हुई थी। फिर जब यह एक सिलसिला सा बन गया तो उसका संकोच जाता रहा और वह ज़्यादा खुलकर बात करने लगा। ऐसी ही एक मुलाक़ात के दौरान उसने अपने परिवार और निजी जीवन के बारे में तफ़सील से बताया था। अपने परिवार का वृत्तांत सुनाते हुए उसने बताया कि उसके पिता यहाँ दिल्ली की सीमा से सटे पश्चिमी उत्तर प्रदेश के एक गूजर बहुल गाँव जावली से आये थे। गाँव में उनका पुश्तैनी काम कपड़े धोना था। पर पिताजी को जवानी में ही दमा हो गया था इसलिए उनसे बहुत मेहनत नहीं हो पाती थी। इसलिए सोचा कि दिल्ली जाकर कुछ और काम किया जाए। यहाँ गाँव के एक सम्पन्न किसान परिवार के रिश्तेदार रहते थे जिनके पास अच्छी-ख़ासी ज़मीन-जायदाद थी। राजा ने यह भी बताया कि हम जिस जगह बैठ कर बात कर रहे हैं वह मेरे पिताजी को घौंडा के इसी ज़मींदार ने दी थी। ज़मींदार ने पिताजी को रहने के लिए यह आठ सौ गज जगह तभी दी थी। यहाँ आकर पिताजी ने तीन-चार भैंस बाँधीं और दूध का काम करने लगे। भैंसों का काम माँ करती थी और पिताजी कपड़ों पर इस्तरी करते थे। राजा के विवरण से जब यह संकेत मिला कि वह धोबी जाति से है तो मुझे उसके घर पर लगी अग्रवाल-कुटीर की नाम-पट्टिका को लेकर जिज्ञासा हुई क्योंकि आमतौर पर अग्रवाल उपनाम वैश्य समुदाय से संबंधित माना जाता है। राजा को इस बारे में ज़्यादा जानकारी नहीं थी। उसने सिर्फ़ इतना बताया कि धोबियों में 'बीसे अग्रवाल' होते हैं और इसी के आधार पर कुछ लोग अपने नाम के पीछे अग्रवाल लगाने लगे हैं।

अपने जीवन के बारे में बात करते हुए राजा ने बताया कि 'दसवीं के बाद पढ़ाई की हिम्मत नहीं हुई। वह भी जैसे-तैसे ओपन स्कूल से पूरी की। उन दिनों बहुत परेशान था। पिताजी की मौत हो चुकी थी। बड़े भाइयों की शादी हो गयी थी। वे सब अपने में मस्त थे। मझे कुछ समझ नहीं आ रहा था कि आगे क्या करूँ। मन कर रहा था कि छोटी-मोटी दुकान कर लूँ। पर यहाँ तो आस-पास हर घर में दुकान खुली है। इसलिए डर लगता था कहीं वह फ़ेल न हो जाए। तभी बड़े भाई ने सलाह दी कि अबकी बार काँवड़ ले आओ। बाक़ी सब कुछ उसके बाद सोचना। काँवड़ लाने का विचार मेरे मन में तभी आया था। तब मैं और मेरा एक दोस्त अमित पहली बार काँवड़ लाने गये थे। हर की पैड़ी से काँवड़ उठाते समय मैंने भोलेनाथ से मनौती माँगी कि भगवान मेरी दुकान का सपना पूरा करवा दो तो पाँच बार लगातार काँवड़ लाऊँगा। काँवड़ लाने के दो महीने बाद मैंने यह दुकान शुरू की थी। शुरू-शुरू में तो बहुत थोड़े से ग्राहक आते थे मेरे पास। फिर किसी ने सलाह दी कि दुकान में चावल, चीनी और सरसों के तेल जैसे आइटम भरो क्योंकि आसपास बहुत सारे बिहारी मज़दूर रहते हैं। भोले की किरपा से काम ठीक चलने लगा है।'

राजा के साथ एक और बैठकी में मैंने उससे जब काँवड़ यात्रा के कष्टों के बारे में पूछा तो उसका जवाब ख़ासा चौंकाने वाला था। बकौल राजा यह बात तो ठीक है कि काँवड़ लाना आसान नहीं होता। पहला दिन तो जोश में बीत जाता है। साथ के भोले हँसी मज़ाक करते चलते हैं। पर दूसरे दिन पैरों में ऐंठन और खिंचाव होने लगता है और तलवों में छाले पड़ने लगते हैं। लेकिन अगर घर वाले कुछ नियम-क़ायदों का ध्यान रखें तो पैर के छालों में इतना दर्द नहीं होता। राजा ने बताया कि 'काँवड़ के दौरान खाने में छौंक नहीं लगाना चाहिए। दूसरे इस बीच किसी जानवर और बच्चों की पिटाई नहीं करनी चाहिए और सबसे बड़ी बात यह कि इस बीच में घर के किसी आदमी को मिलन (सम्भोग) नहीं करना चाहिए। अगर घर वाले इन नियमों का पालन करते रहें तो काँवड़ लाते समय बहुत कष्ट नहीं होता।'

काँवड़ सेवा समितियाँ : स्थानीय राजनीति के प्रवेश-बिंदु

एक साधारण काँवड़िये के जीवन-संसार और उसकी आस्था में जब काँवड़ की सेवा समितियाँ प्रवेश करती हैं तो दोनों की अन्योन्यक्रिया से एक दिलचस्प राजनीतिक प्रक्रिया जन्म लेती है। काँवड़ के समग्र आयोजन की दृष्टि से देखें तो सेवा समितियाँ केंद्रक की भूमिका निभाती हैं। लेख के इस खण्ड में हम सेवा समितियों से जुड़े लोगों के अनुभवों और गतिविधियों पर रोशनी डालते हुए स्थानीय राजनीतिक विन्यास और उसमें सक्रिय द्वैध प्रवृत्तियों को चिह्नित करने की कोशिश करेंगे।

(अ) भूतेश्वर काँवड़ सेवा समिति : समिति के अध्यक्ष पण्डित राकेश शर्मा कांति नगर में रहते हैं। राकेश जी का घर यमुनापार की अनियोजित कॉलोनियों का एक प्रतिनिधि घर कहा जा सकता है। घर हवादार नहीं पर दमघोंटू भी नहीं। साफ़-सुथरा और सादा। एक ऐसा घर जिसमें धीरे-धीरे उपभोक्ता सामानों की आमद ने गृहस्थी के अभावों को दूर किया है। घर का यह कमरा कुछ-कुछ दीवाने-खास सा है। एक तरफ़ दीवार से सटा सोफ़ा सैट और उसके सामने सनमाइका-टॉप मेज। थोड़ी देर बाद राकेश जी की पत्नी और उनका बेटा भी आ पहुँचते हैं। शायद उन्हें भी जिज्ञासा हो रही थी कि मैं काँवड़ के बारे में क्या पूछना चाहता हूँ। शायद धार्मिक आदमी के लिए धर्म जिज्ञासा का नहीं बल्कि विश्वास का मामला होता है। उसे यह बड़ा रहस्यपूर्ण लगता है कि किसी के लिए धर्म विश्लेषण का विषय भी हो सकता है। राकेश जी के साथ यह बातचीत पूर्व-निश्चित प्रश्नावली पर आधारित नहीं थी।

साक्षात्कार की शुरुआत इस प्रश्न से हुई कि पहले काँवड़ के प्रति लोगों में इतना उत्साह नहीं था। लेकिन पिछले वर्षों में यह एक बड़ी सामाजिक परिघटना बन चुकी है। आपके हिसाब से इस बदलाव के क्या कारण हैं। क्या इसके पीछे किसी तरह की राजनीति भी काम कर रही है? जवाब पर आने से पहले राकेश जी ने मेरे बारे में पूछा। मेरठ और बागपत में अपनी रिश्तेदारियों के बारे में बताया। गाँव से अपने जुड़ाव की बात उन्होंने कई बार की। हालाँकि उनके मुताबिक गाँव में मैं पैदा-भर हुआ था। बाक़ी सारा समय दिल्ली में ही बीता है। काँवड़ पर आते हुए उन्होंने बताया, '1984 में पहली बार मुझे अपनी माँ से काँवड़ के बारे में पता चला। माँ ने मुझे बताया कि यह पितरों की मुक्ति के लिए होता है। मेरे पिताजी का देहांत बहुत पहले हो चुका था। काँवड़ के बारे में जानने के बाद मुझ पर जुनून सा सवार हो गया और मैंने ठान लिया कि पिताजी की आत्मा की शांति के लिए मैं काँवड़ लाकर ही रहूँगा। लेकिन उन दिनों माहौल कुछ ख़राब चल रहा था। जगह-जगह दंगे हो रहे थे। आप जानते ही हैं कि हरिद्वार के रास्ते में मुसलमानों के बहुत सारे गाँव पड़ते हैं। मुझे सब लोगों ने समझाया कि ऐसे माहौल में काँवड़ अगर लानी ही है तो गंगा से लाकर अनूपशहर में ही चढ़ा दो। लेकिन मैं मानने को तैयार नहीं था। मैंने कह दिया कि चाहे मेरी घरवाली विधवा हो जाए पर काँवड़ मैं लाकर ही रहूँगा।' इस वर्णन के दौरान राकेश जी बार-बार अपने कानों के कोनों को छूकर 'सब बाबा की म्हैर' कहते रहे। काँवड़ के रूप को लेकर पण्डित जी ख़ासे आग्रही दिखाई दिये, 'मैं तो यह कहूँगा कि 90 क्या 95 पर्सेंट काँवड़िए काँवड़ का नियम नहीं जानते। जैसे काँवड़िये को शौच जाने को लैटरिन जाना नहीं कहना चाहिए। इसके लिए सही शब्द गोबर है। ऐसे ही जब काँवड़िये को भोजन के लिए बुलाया जाता है तो कहना यह चाहिए कि आ भोले सानी खा ले। इसी तरह काँवड़िये को नादिया या नंदी कह कर पुकारा जाना चाहिए। आजकल आप किसी भी काँवड़िए के पास 'तंग'[9] नहीं देखेंगे। खड़ी काँवड़ को ज़मीन पर नहीं रखा जा सकता। इसके लिए काँवड़ शिविर में ज़मीन

---

[9] तंग एक मोटा धागा होता है जिसे काँवड़िया अपनी कमर पर बाँधे रखता है. यह पशु की नाक में बाँधी जाने वाली नाथ या नकेल का प्रतीक होता है. नियम के अनुसार हर बार काँवड़ उठाने से पहले काँवड़िये को इस तंग को बाँधना चाहिए. ऐसा न करने पर काँवड़ खण्डित हो जाती है.

से चार-पाँच फुट ऊपर बल्लियाँ बाँध दी जाती हैं। और खड़ी काँवड़ को उस पर लटका दिया जाता है। तंग को भी बल्लियों पर ही बाँधा जाना चाहिए पर आजकल कोई इन नियमों का पालन नहीं करता।'

मैं राकेश जी से जानना चाहता था कि काँवड़ सेवा समिति बनाने और शिविर लगाने का विचार उनके ज़ेहन में कैसे आया। इस पर उन्होंने बताया, 'जी, हमने बुज़ुर्गों से यह बात सुनी थी कि काँवड़िये के हिस्से में सिर्फ काँवड़ की लकड़ी रह जाती है। उसका सारा पुण्य तो काँवड़ियों की सेवा करने वालों के हिस्से में चला जाता है। कुछ ऐसे ही विचार थे जब हमने काँवड़ का शिविर लगाने की सोची। पहली बार हमने 1999 में शिविर लगाया था। शुरू में हमें पुलिस और एमसीडी वालों ने अनुमति नहीं दी। उस वक़्त शिव सेना और अखिल भारतीय हिंदू शक्ति दल वालों ने हमारी बहुत सहायता की। अगर वे मदद नहीं करते तो हम कभी शिविर नहीं लगा पाते। उसी के बाद से मैं हिंदू शक्ति दल का सदस्य बन गया।' यह बताते हुए राकेश जी ने मेरे सामने शक्ति दल का कार्ड रख दिया। कार्ड के ऊपरी कोने पर एक नारा लिखा था— 'अखंड भारत हमारा उद्देश्य, त्रिशूल हमारी पहचान'। राकेश जी के अनुसार, 'उस समय हमें पता नहीं था कि शिविर के लिए सरकार सहायता भी देती है। बाद में हमने सरकारी मदद लेनी शुरू कर दी। उसी समय की बात है जब तीर्थ यात्रा विकास समिति के चेयरमैन एक ब्राह्मण सज्जन हुआ करते थे। मैं उनसे जानकारी निकाल कर मिला और श्यामलाल कॉलेज के सामने शिविर लगाने में आने वाली दिक़्क़तों के बारे में बात की। उन्होंने मुझसे कहा कि यहाँ के चक्कर में क्यों पड़े हो तुम बदरपुर बॉर्डर पर टैंट लगा लो। वहाँ एक बरगद का पेड़ है और बहुत सारी ज़मीन ख़ाली पड़ी है। वहीं टैंट लगा लो। वहीं मंदिर बना लेना। धीरे-धीरे सारी ज़मीन ही तुम्हारी हो जाएगी। पर मैंने बदरपुर में शिविर लगाने से इनकार कर दिया। मैंने कहा कि एक तो वह इलाक़ा मेरा जाना-पहचाना नहीं, दूसरे मंदिर का लालच भी मुझे नहीं है।'

राकेश जी हर बात में अपने रिश्तेदारों या जानकारों के पद और उनकी हैसियत के बारे में ज़िक्र कर डालते थे। इलाक़े के डीसीपी को उन्होंने अपने एक साढ़ू का दोस्त बताया। इसी तरह अपने ससुर के बारे में भी वे यह बताने से नहीं चूके कि वे अपने गाँव के नम्बरदार हुआ करते थे। इसी तरह दिल्ली के तत्कालीन वित्त मंत्री डॉ. वालिया को भी वे अपने पिता के समान मानते हैं। अधिकारियों और राजनेताओं के ज़िक्र से यह बात लगातार साफ़ होती जा रही थी कि राकेश जी की धार्मिकता मूलतः सत्ता के विमर्श से जुड़ी है। दिलचस्प बात यह भी है कि राकेश जी जैसे ही बड़प्पन की बात शुरू करते वैसे ही 'बाबा की म्हैर' को ओट बनाने लगते। अपने टैंट की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा, 'भाई साहब बाबा की म्हैर से अबकी बार हमने टैंट में फ़व्वारे का प्रबंध किया था। यह समझ लीजिए कि बॉर्डर से लेकर बस अड्डों तक किसी शिविर में ऐसी व्यवस्था नहीं थी। काँवड़िये आराम तो किसी और शिविर में करते थे पर नहाते हमारे ही टैंट में थे।' राकेश जी ने यह बात पूरी विनम्रता के साथ तीन बार बताई कि इस काँवड़ सेवा संघ का संस्थापक मैं ही हूँ। और अभी मैंने गोवर्धन परिक्रमा संघ की भी स्थापना की है।

बातचीत के दौरान जब मैंने काँवड़ के ज़रिये राजनीतिक फ़ायदा उठाने और अधिकारियों से सम्पर्क बनाने की बात का ज़िक्र किया तो राकेश जी ने कहा, 'आपकी यह बात बिल्कुल ठीक है कि आजकल बहुत सारे लोग काँवड़ के माध्यम से राजनीतिक सम्पर्क बनाते हैं।' (यहाँ राकेश जी ने स्वर्णकार संघ द्वारा लगाए गये टैंट के कर्ताधर्ता आदेश कुमार वर्मा का ज़िक्र किया जो काँवड़ की यात्रा सम्पन्न होने के दो महीने बाद किसी अवसर पर पुलिस और एमसीडी के अधिकारियों तथा नेताओं का औपचारिक अभिनंदन करते हैं और उन्हें ट्रॉफ़ियाँ बाँटते हैं।) जहाँ तक राकेश जी का सवाल है वे जन्माष्टमी के दिन काँवड़ियों को बुलाकर उनका स्वागत करते हैं। पुरस्कार की बात आते

काँवड़ का शिविर लगाने के लिए स्थानीय सत्ता-तंत्र से सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। इसके लिए पुलिस और एमसीडी के अधिकारियों व स्थानीय नेताओं से राबिता बनाना पड़ता है। इस लिहाज़ से काँवड़ से जुड़ी गतिविधियाँ सामाजिक और राजनीतिक सत्ता के स्थानीय तंत्र में एक प्रवेश-बिंदु के रूप में देखी जा सकती हैं।

ही राकेश जी का बेटा बोल उठता है, 'अबकी बार हमने जन्माष्टमी की यात्रा का सीएनयेन (यह कोई स्थानीय चैनल है) से प्रसारण कराया था।' यहाँ राकेश जी फिर बताते हैं कि उनका कोई रिश्तेदार इस चैनल में बड़े पद पर है। बेटा आगे बताता है, 'वैसे हमने भी प्रोग्रेस की है। पहले हमारा टैंट उतना बड़ा नहीं हुआ करता था।' अपने राजनीतिक जुड़ावों के बारे में राकेश जी ने एक और बात बताई कि वे पूर्वी दिल्ली के कांग्रेस संगठन में भी पदाधिकारी हैं। जब मैंने उनसे पूछा कि हिंदू शक्ति दल और कांग्रेस में एक साथ होने से उनके भीतर कोई नैतिक संकट पैदा नहीं होता तो इसका उन्होंने निर्विकार सा उत्तर दिया, 'ऐसा है सर कि इलाक़े में ढाई-तीन हज़ार लोगों को मैं जानता हूँ। राजनीतिक पार्टियाँ, जैसे भाजपा और कांग्रेस, मेरी इसी ताक़त के कारण मुझे अपने-अपने साथ रखना चाहती हैं। लेकिन मेरी भावना तो मूलतः धार्मिक ही रहती है।' शुद्ध धार्मिकता जैसी अगर कोई चीज़ होती है तो उसके चलते अकसर व्यक्ति को अपने परिवार और नज़दीकी परिवेश में तिरस्कार का शिकार भी होना पड़ जाता है। राकेश जी का उदाहरण इस रूढ़ छवि को तोड़ता प्रतीत होता है। उनके परिवार के बच्चे और उनकी पत्नी सभी उतने ही धार्मिक हैं।

मैं जब राकेश जी से बात कर रहा था तो सबके सब एक दूसरे का हाँ भरने को तैयार बैठे दिखाई पड़ रहे थे। यह मुझे एक विरल दृश्य लग रहा था। यक़ीन करना मुश्किल था कि चीज़ें इतनी सपाट भी हो सकती हैं। इस परिवार के लिए धर्म सामाजिक प्रगति और आर्थिक सम्पन्नता का माध्यम बनकर आया है। अब से दस वर्ष पहले वे शायद आम और अनाम ज़िंदगी जी रहे थे। काँवड़ के प्रचार और फैलाव के साथ उनकी ज़िंदगी में भी बदलाव आना शुरू हुआ।

इस साक्षात्कार से स्पष्ट था कि काँवड़ का शिविर लगाने के लिए स्थानीय सत्ता-तंत्र से सम्पर्क

स्थापित करना पड़ता है। इसके लिए पुलिस और एमसीडी के अधिकारियों व स्थानीय नेताओं से राब्ता बनाना पड़ता है। इस लिहाज़ से काँवड़ से जुड़ी गतिविधियाँ सामाजिक और राजनीतिक सत्ता के स्थानीय तंत्र में एक प्रवेश-बिंदु के रूप में देखी जा सकती हैं।

(ब) मौजपुर काँवड़ सेवा संघ

इस सगंठन का ढाँचा भूतेश्वर काँवड़ समिति की तरह एक व्यक्ति पर केंद्रित नहीं है। इसमें कई पदाधिकारी हैं। यह तथ्य काँवड़ यात्रा के दौरान दोनों संगठनों द्वारा अपने-अपने पंडालों पर लगाए जाने वाले पोस्टरों से भी ज़ाहिर होता है। भूतेश्वर समिति के पंडाल पर तीन वर्षों के दौरान केवल उसके अध्यक्ष का बड़ा सा चित्र लगता रहा है, जबकि मौजपुर संघ के पोस्टर में उसके सभी पदाधिकारी एक साथ दिखाई देते हैं।

संगठन के सचिव राजबीर सिंह काँवड़ को मीडियम क्लास की धार्मिकता मानते हैं। पर मीडियम क्लास से उनका आशय मध्यवर्ग से नहीं है। इस वर्ग के बारे में उनकी राय है कि वह पैसे से दबा है। उनके अनुसार सम्पन्नता और ख़ुशहाली की इच्छा ही व्यक्ति को मंदिर या गुरद्वारे की ओर ले जाती है। वे यह भी कहते हैं कि 'हाई क्लास' की तरह आम आदमी के पास पूजा-पाठ करने का वक़्त नहीं होता। मौजूदा दौर की मुश्किलों का ज़िक्र करते हुए वे कहते हैं कि पिछले दस-पंद्रह सालों में आम आदमी के लिए गुज़र-बसर करना मुश्किल होता गया है। उनका मानना है कि शायद जीवन के ऐसे दबावों के कारण लोगों में काँवड़ का ज़ोर बढ़ा है। काँवड़ के बढ़ते प्रसार के बारे में टिप्पणी करते हुए इस संगठन के मीडिया प्रभारी विक्रमभाई कहते हैं, 'समाज के आचार-विचार एक समय के बाद संस्कृति बन जाते हैं। और कुछ समय बाद संस्कृति पर्व और त्योहार का रूप धारण कर लेती है।' विक्रमभाई कथावाचक हैं। प्रवचन के सिलसिले में वे स्वीडन और नार्वे आदि घूम आये हैं। वे धर्म और राष्ट्र को एकमेक करके देखते हैं। विक्रम बहुत गर्व के साथ बताते हैं कि कथा आरम्भ करने से पहले मैं हमेशा राष्ट्रीय झंडा फहराता हूँ। काँवड़ को वे आस्था की पुनर्स्थापना के रूप में देखते हैं। उनके लिए काँवड़ आस्था की फुटकर अभिव्यक्ति न होकर हिंदू चेतना का विस्तार है। विक्रम इस जागरण के तहत योग और देशी चिकित्सा पद्धतियों को भी रख कर चलते हैं। उनके अनुसार पूरी दुनिया में भारत ही ऐसा देश है जिसे धर्म-भूमि कहा जाता है। विक्रमभाई इस बात पर ख़ास ज़ोर देते हैं कि काँवड़ समाज में एकता को बढ़ावा देती है। सभी काँवड़ियों की वेशभूषा एक जैसी होती है जिससे उनके अंदर जातिगत भावनाएँ ख़त्म हो जाती हैं। आस्था की अभिव्यक्ति को विक्रमभाई सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के परिप्रेक्ष्य में रख कर तौलते हैं। इस संदर्भ में वे मानसरोवर यात्रा का उल्लेख करते हैं जिसमें देश के सभी भागों से लोग शामिल होते हैं।

विक्रम के मौजूदा व्यवसाय और उनके प्रशिक्षण में संगति बैठाना मुश्किल लगता है। कॉलेज की पढ़ाई पूरी करने के बाद उन्होंने भारतीय विद्या भवन से मार्केटिंग में डिप्लोमा किया था। जिन दिनों विक्रम बाज़ार में अपने लिए सम्भावनाएँ तलाश रहे थे उनके पड़ोस में राम कथा का आयोजन किया गया। परिवार के आग्रह पर विक्रम ने एक दिन मंच पर कथावाचक का साथ दिया। फिर यह काम उन्हें इतना अच्छा लगा कि धीरे-धीरे यही उनका व्यवसाय बन गया।

इस संगठन के संरक्षक बलराम बंसल बताते हैं कि काँवड़ियों को औपचारिक सुविधाएँ देने की शुरुआत दिल्ली के पूर्व मुख्यमंत्री साहिब सिंह वर्मा ने की थी। बंसल के मुताबिक़ 1995 में उन्होंने धौला कुआँ के पास एक काँवड़ शिविर का उद्घाटन किया था और कार्यक्रम से वापस लौट कर काँवड़िया समिति के नाम से एक पहल की थी। जिसमें *पांचजन्य* के सम्पादक, शिविर लगाने वाले लोगों तथा एडीएम, एसडीएम जैसे प्रशासनिक अधिकारियों को शामिल किया गया था। उल्लेखनीय है कि इस समिति में बलराम बंसल भी शामिल थे। उनके अनुसार काँवड़ शिविरों को दी जाने वाली सुविधाएँ जैसे वाटर प्रूफ़ पंडाल, पानी का टैंकर और फ़र्स्ट एड आदि की व्यवस्था उसी समय की

गयी थी। बंसल बताते हैं कि इससे पहले जो भी काँवड़ का शिविर लगाना चाहता था उसे स्थानीय कार्यालय में जाकर क्लर्क का पेट भरना पड़ता था। बंसल गर्व के साथ कहते हैं कि इस अव्यवस्था को ख़त्म करने के लिए हमने कैंप वालों को पाँच चीज़ें देनी शुरू कीं: वाटर प्रूफ़ तंबू, तख़्त और उसके ऊपर तिरपाल, बिजली और पानी का टैंकर तथा डॉक्टरी की सुविधा। इसमें कैंप की जगह को फ़्री देने का निर्णय किया गया। बंसल के इस ब्योरे से यह पता चला कि काँवड़िया समिति में कैलाश-मानसरोवर यात्रा शामिल करने के बाद उसे तीर्थयात्रा विकास समिति कहा जाने लगा। इस वर्ष तीर्थयात्रियों का दिल्ली की विधान सभा में सम्मान भी किया गया।

स्थानीय राजनीति में काँवड़ समितियों की भूमिका के बारे में बंसल ख़ासी दयानतदारी दिखाते हुए बताते हैं कि 1999 में यमुना विहार क्षेत्र के एक व्यवसायी मोहन लाल गर्ग ने तीर्थ यात्रा समिति के अध्यक्ष के सामने सड़क के किनारे ख़ाली पड़ी ज़मीन पर काँवड़ मंदिर स्थापित करने की इच्छा व्यक्त की। मोहन लाल इस जगह को केवल सौ गज बता रहे थे। लेकिन बंसल के मुताबिक़ जब तीर्थ यात्रा समिति के अध्यक्ष ने मुझे वहाँ भेजा तो मैंने पाया कि जिस जगह को सौ गज बताया जा रहा है, वह कम से कम सात सौ-आठ सौ गज जगह है। हद यह थी कि यह जगह नाले के बराबर में थी। मंदिर के लिए तो यह स्थान वैसे भी उपयुक्त नहीं था। बंसल ने यह भी बताया कि काँवड़ मंदिर की इस योजना में क्षेत्र के तत्कालीन विधायक भी शामिल थे। मुख्यमंत्री इस मंदिर के पक्ष में नहीं थे और एक बार तो उन्होंने मंदिर के प्राण-प्रतिष्ठा समारोह में आने से भी मना कर दिया था। बाद में वे बहुत थोड़ी देर के लिए उक्त कार्यक्रम में शामिल हुए थे। बंसल ने यह सूचना भी दी कि मंदिर निर्माण अभियान से जुड़े मोहन लाल गर्ग ने एक बार भाजपा से पार्षद का चुनाव लड़ने का भी प्रयास किया था।

बलराम बंसल कहते हैं कि तीर्थयात्रा राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ करने वाली प्रक्रिया है। उन्होंने बताया कि 1994 में वे कैलाश-मानसरोवर की यात्रा पर गये थे जहाँ उन्हें अलग-अलग प्रांतों के लोगों से मिलने का सौभाग्य मिला। यात्रा की अवधि के दौरान सब तीर्थयात्री एक-दूसरे से घुल-मिल गये जिससे मुझे अनुभव हुआ कि यह यात्रा राष्ट्रीय एकता को मजबूत करती है। इस यात्रा से लौटने के बाद बंसल ने धर्म यात्रा महासंघ की बैठक में यह प्रस्ताव रखा कि इस यात्रा के लिए दिल्ली सरकार को अनुदान देना चाहिए। इस संबंध में बंसल दिल्ली के तत्कालीन मुख्यमंत्री साहिब सिंह वर्मा से भी मिले जिन्होंने तुरंत एक परिपत्र तैयार कराया जिसे बाद में विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्रियों के पास प्रार्थना पत्र के रूप में भिजवाया गया। बंसल के अनुसार उन्होंने इस प्रार्थना पत्र को अख़बारों में भेजने की व्यवस्था की। इसका परिणाम यह हुआ कि ख़बर बनते ही सरकार इस दिशा में कोई न कोई ठोस कदम उठाने के लिए मजबूर हो गयी।

यह दिलचस्प है कि बंसल काँवड़ सेवा समितियों को किसी तरह के राजनीतिक हित या स्वार्थ से प्रेरित नहीं मानते। सेवा समितियों के प्रबंधकों को वे सेवाभावी लोग मानते हैं। दिल्ली सरकार द्वारा गठित काँवड़िया समिति की स्थापना प्रक्रिया को याद करते हुए वे बार-बार काँवड़ शिविरों के प्रबंधकों के सेवा भाव और उनकी सम्पन्नता का ज़िक्र करते हैं। उनके मुताबिक़ उस समय जिन शिविरों के संचालकों और प्रबंधकों को काँवड़िया समिति में शामिल किया गया था उनमें से कोई भी करोड़पति से कम नहीं था। इस संदर्भ में बंसल यह भी कहते हैं कि तत्कालीन मुख्यमंत्री साहब सिंह वर्मा उनकी इस भावना से गहरे प्रभावित थे और उन्होंने इसी बात को ध्यान में रखकर काँवड़िया समिति का गठन किया था।

बलराम बंसल के विवरण में धर्मयात्रा महासंघ का उल्लेख एक ऐसी केंद्रीय संस्था के रूप में आता है जिसने अपनी सांगठनिक क्षमता और प्रभाव का इस्तेमाल करके काँवड़ यात्रा को लोकप्रिय बनाने और उसके प्रबंधन में ख़ासी अहम भूमिका निभाई है। यहाँ एकबार स्मरण करें कि बंसल ने

मानसरोवर यात्रा से लौटकर काँवड़ यात्रा को सरकारी अनुदान देने का मुद्दा सबसे पहले धर्मयात्रा महासंघ की बैठक में ही उठाया था। महासंघ के केंद्रीय कार्यालय द्वारा प्रकाशित पुस्तिका *प्रगति दर्पण-2007* से संस्था की गतिविधियों और दृष्टि के बारे में एक स्पष्ट रूपरेखा बनाई जा सकती है।

प्रगति दर्पण के अध्यक्षीय वक्तव्य में तीर्थयात्रा महासंघ की स्थापना प्रक्रिया के कुछ सूत्रों की ओर संकेत किया गया है। इसके अनुसार काल के प्रभाव से पैदा हुई अव्यवस्था दूर करने के लिए 26 दिसंबर, 1995 को एक न्यास का गठन किया गया। यही धर्मयात्रा महासंघ का उद्भव है। उल्लेखनीय है कि महासंघ स्थापित करने की तात्कालिक प्रेरणा सीधे तौर पर काँवड़ की परिघटना से जुड़ी है। पुस्तिका के इसी अध्यक्षीय वक्तव्य में आगे कहा गया है कि गोमुख, हरिद्वार तथा सुल्तानगंज आदि स्थानों से काँवड़ उठाने वाले लगभग एक करोड़ काँवड़ियों को अनेकानेक प्रकार की असुविधाओं का सामना करना पड़ता था। उनके ठहरने और भोजन आदि की समस्याएँ रहती थीं। काँवड़ियों की सुरक्षा पर भी कई बार प्रश्न चिह्न लगे हैं। यहाँ तक कि असामाजिक तत्त्व उन पर गंदा पानी तथा मांस के टुकड़े आदि फेंक कर काँवड़ भंग करने का दुस्साहस करते थे।[10] न्यास ने दिसंबर 1995 में दिल्ली के तत्कालीन मुख्यमंत्री मदनलाल खुराना को काँवड़ियों की समस्याओं के संबंध में एक ज्ञापन दिया जिसमें उनसे दिल्ली में काँवड़ियों के लिए अलग से एक तीर्थाटन मंत्रालय बनाने की माँग की गयी थी। इस ज्ञापन पर कार्रवाई करते हुए मुख्यमंत्री ने दिल्ली तीर्थयात्रा विकास समिति का गठन कर दिया।

लोकधर्मिता एवं सेकुलर राज्य का द्वंद्व

काँवड़ सेवा समितियों के स्थूल सर्वेक्षण से यह अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि उनमें से अधिकांश समितियाँ स्थानीय व्यापारी व व्यावसायिक समूहों के नियंत्रण में है। इनमें ज़्यादातर समूह वैश्य समुदाय से संबंध रखते हैं। यह बात काँवड़ के बड़े शिविरों पर विशेष रूप से लागू होती है। हमारे अध्ययन क्षेत्र में ब्राह्मण व क्षत्रिय विशेषणों वाली समितियाँ भी काम कर रही हैं परंतु मध्यवर्ती जाति की केवल एक ही बड़ी समिति श्री मेढ़ क्षेत्रिय काँवड़ सेवा समिति मौजूद है जो स्वर्णकार समुदाय से ताल्लुक़ रखती है। समितियों का प्रभाव और दायरा जैसे-जैसे बढ़ता जाता है वैसे-वैसे स्थानीय सत्ता-तंत्र में उनकी दख़ल और पहुँच भी मजबूत होने लगती है। काँवड़ समितियों की इस सक्रियता को लोकधर्मिता और सत्ता-राजनीति के एक बड़े पैटर्न का स्थानीय प्रारूप माना जा सकता है।

पिछले तीन दशकों में उत्तर भारतीय समाज में एक नयी तरह की लोकधर्मिता उभरी है। इस धार्मिकता की एक विशेषता यह है कि वह अंतर्मुखी न होकर सामाजिक गरिमा, सुविधाओं की दावेदारी और संसाधनों की पहुँच के इर्द-गिर्द संगठित हुई है। इस नाते उसके अंत:सूत्र एक विस्तृत स्थानीय राजनीति का निर्माण करते हैं। स्थानीय शासन तंत्र, नौकरशाही पर दबाव बनाना और सुविधाएँ लेना या स्थानीय नागरिक ज़रूरतों के समाधान के लिए अनौपचारिक मोर्चे क़ायम करना, स्थानीय नेताओं और राजनीतिक दलों से सम्पर्क करना इस स्थानीय राजनीतिक विन्यास के ख़ास बिंदु हैं।[11]

---

[10] *प्रगति दर्पण-7* (2007), तीर्थयात्रा महासंघ द्वारा प्रकाशित : 3.

[11] पार्थ चटर्जी इसके लिए एक उपयोगी अवधारणा राजनीतिक समाज का प्रयोग करते हैं. इसे वे नागरिक समाज के बरक्स रखकर देखते हैं जिसमें नागरिक अधिकारों की एक सुपरिभाषित व्यवस्था होती है. राजनीतिक समाज को नागरिक समाज से इस अर्थ में भिन्न माना जा सकता है कि वहाँ इन अधिकारों के लिए मुहिम चलानी पड़ती है. पार्थ के अनुसार राजनीतिक समाज के समूह अपने अधिकारों और सुविधाओं के लिए अपने जैसे तथा अपने से ज़्यादा प्रभावशाली और अधिकार सम्पन्न समूहों, सरकारी अधिकारियों, राजनैतिक दलों तथा नेताओं के साथ सम्पर्कों का एक व्यापक ढाँचा खड़ा करने की रणनीति अपनाते हैं. देखें, पार्थ चटर्जी (2004), *पॉलिटिक्स ऑव द गवर्न्ड,* परमानेंट ब्लैक, नयी दिल्ली : 40-41.

वास्तव में यह एक ऐसी राजनीति है जो सतह से नीचे सक्रिय रहती है। काँवड़ के तीर्थयात्रियों को केवल शास्त्र सम्मत हिंदू धर्म का अनुयायी मानना एकांगी विचार होगा। सही मायने में वे उदार अर्थव्यवस्था के उपभोक्ता हैं। आजीविका के पारम्परिक स्त्रोतों से वंचित इन समुदायों के सामने दिल्ली एक बड़ा विकल्प बनता गया है। काँवड़ का सामाजिक आधार उच्च वर्गों/जातियों के बजाय ऐसे ही निम्न और मध्यवर्ती जातियों से मिल कर बना है।

लोकधर्मिता इस समाज में राजनीति का प्रवेश बिंदु शायद इसलिए भी बन जाती है क्योंकि स्थानीय प्रशासन और नागरिक संस्थाएँ जवाबदेही से काम नहीं करतीं। अमूमन देखा गया है कि काँवड़ लाने यानी यात्रा पर जाने के लम्बे अनुभव के बाद एक आम श्रद्धालु की इच्छा काँवड़ के प्रबंधन से जुड़ जाने की होती है। काँवड़ शिविरों की तैयारी उसे स्थानीय नौकरशाही और शासन के सम्पर्क में आने का मौक़ा देती है। किंतु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि काँवड़ शिविरों को राजनीतिक आकांक्षाओं का कार्य-स्थल ही मान लिया जाए।

वास्तव में यह एक ऐसी राजनीति है जो सतह से नीचे सक्रिय रहती है।[12] काँवड़ के तीर्थयात्रियों को केवल शास्त्र सम्मत हिंदू धर्म का अनुयायी मानना एकांगी विचार होगा। सही मायने में वे उदार अर्थव्यवस्था के उपभोक्ता हैं। आजीविका के पारम्परिक स्त्रोतों से वंचित इन समुदायों के सामने दिल्ली एक बड़ा विकल्प बनता गया है। काँवड़ का सामाजिक आधार उच्च वर्गों/जातियों के बजाय ऐसे ही निम्न और मध्यवर्ती जातियों से मिल कर बना है। ये ऐसी जातियाँ हैं जिन्होंने चुनावी राजनीति के ज़रिये अपने लिए जगह बनाई है। मूलतः खेती या दस्तकारी से जुड़ी इन जातियों का एक हिस्सा अगर गाँवों में ही रह गया है, तो दूसरा हिस्सा दिल्ली के सीमांत पर आकर बस गया है।

---

[12] नागरिक समाज और राजनीतिक समाज के विमर्श को विस्तार देते हुए आदित्य निगम अपने लेख में यह प्रस्ताव रखते हैं कि आज़ादी के बाद हिंदू और मुसलमानों में समुदायगत और पहचान से जुड़ी सक्रियता धीरे-धीरे नागरिक समाज की मुख्य संस्थाओं से कटकर भूमिगत होने लगी थी. काँवड़ के आधार-समाज की राजनीतिक सक्रियता को हम इस भूमिगत से जोड़ कर देखते हैं. लेख में उत्तर-पूर्व दिल्ली के जिस सामाजिक भूगोल का ज़िक्र किया गया है वह काँवड़ से जुड़ी गतिविधियों का भी क्षेत्र है.

मुख्यत: खेती, दस्तकारी, बढ़ईगीरी, लोहारगीरी और देशी तकनीक की परम्परा से निकले आबादी के इन विभिन्न समूहों ने अपने पारम्परिक कौशलों के दम पर कुछ सम्पन्नता भी हासिल की है। लेकिन यह सम्पन्नता मध्यवर्ग की सम्भ्रांत सम्पन्नता नहीं है। नागरिक संस्थाओं, शिक्षा और शहरी संस्कृति से उसका जुड़ाव बहुत गहरा नहीं है। यह वर्ग उपभोग की आधुनिकता से तो जुड़ा है, किंतु जिसे हम नागर संस्कृति कहते हैं, उसके साथ इस वर्ग का जुड़ाव अनिश्चयात्मक है। उसकी एक परम्परागत दुनिया है और इसी दुनिया के मूल्य-मान्यताओं / आचार और विश्वासों से उसका विश्व-बोध तैयार होता है। शहरी समाज में अपनी पहचान की दावेदारी स्थापित करने के लिए आधुनिक राज्य की प्रणाली उसके लिए बहुत अनुकूल नहीं बैठती। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो राजनीतिक प्रतिनिधित्व के मौजूदा विमर्श में वह अपनी धार्मिकता को छोड़ कर अरक्षित महसूस करता है।

सामाजिक स्तरीकरण की दृष्टि से यह एक ऐसा हिस्सा है जो एक स्थूल अर्थ में ग़ैर-आधुनिक विश्व-बोध के साथ जीवनयापन करता रहा है। आज़ादी के बाद राज्य की विभिन्न संस्थाओं ने मिलकर जिस आधुनिक सामूहिकता का निर्माण किया है, उससे यह वर्ग ख़ुद को सही मायने में जोड़ नहीं पाया है। उसका बहुसंख्यक हिस्सा अभी भी समाज की पारम्परिक संरचना में ज़्यादा सहज महसूस करता है। इसलिए नागरिक तथा सेकुलर समाज का आदर्श इस वर्ग के लिए एक अजनबी विचार है।

स्वतंत्र भारत में आधुनिक सामूहिकता का पोषण करने वाली संस्थाएँ औपनिवेशिक संघर्ष की सहज तार्किक परिणति थीं। पर ये संस्थाएँ मूलत: अभिजनमूलक ही बनी रहीं। जैसा कि पार्थ चटर्जी कहते हैं पश्चिमी लोकतंत्र की संस्थाओं को भारत में रोपने की यह इच्छा अभिजन समूहों का स्वप्न ही बनी रही।[13] वास्तविक जनता नागरिक समाज के आदर्श से कभी तालमेल नहीं बिठा पायी। हम यहाँ जिसे वास्तविक जनता कह रहे हैं वह परम्पराओं में जीती थी और सामाजिक सत्ता के ढाँचे और उसके अंत:सूत्रों को धर्म के मुहावरे में समझने की आदी थी। सेकुलर राज्य का आदर्श उसकी कल्पना से बाहर था। आज़ादी के बाद इस जनता का नेतृत्व नेपथ्य में चला गया और एक तरह से भूमिगत हो गया। पर दृश्य से परे होने का अर्थ सामाजिक जीवन से बाहर होना नहीं था। यह नेतृत्व पूरे दौर में समानांतर संस्थाएँ— जैसे स्कूल, पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकालय, प्रचार सामग्री, अख़बार आदि चलाता रहा।[14] दरअसल, सेकुलर राज्य के इच्छित आदर्श के भीतर यही वह जगह थी जहाँ धार्मिक मूल्यों और बोध से छन कर आयी जीवन-पद्धति खुद को लगातार जीवंत बनाये रही। नागरिक-सेकुलर समाज के समर्थकों को यह बात अस्सी के दशक में समझ आनी शुरू हुई कि सांस्कृतिक आधुनिकीकरण की परियोजना का बहुसंख्यक जनता के लिए कोई सीधा मतलब नहीं था।

इसलिए हमें लगता है कि जब हम राजनीतिक प्रक्रिया में धर्म की वर्चस्वकारी उपस्थिति या आस्था की लहलहाती प्रवृत्ति की बात करते हैं तो दरअसल थोड़ी देर के लिए हम यह भूल जाते हैं कि राज्य और नागरिक संस्थाओं को धर्म के कोण से देखने का यह आग्रह सतह के नीचे हमेशा मौजूद रहा है। काँवड़ की परिघटना को इस भूमिगत धार्मिकता के साथ जोड़ कर देखा जा सकता है। जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया है कि लोकधर्मिता का एक संगठित प्रवृत्ति के रूप में उदय और हिंदुत्ववाद का लोक-वृत्त में प्रवेश सहवर्ती घटनाएँ हैं। हिंदुत्ववाद अपने आर्थिक और सामाजिक वर्चस्व के बल पर लोकधर्मिता के दायरे को अपने प्रभाव-क्षेत्र में लाता जा रहा है।

---

[13] पार्थ चटर्जी (1998), 'बियांड द नेशन? ऑर विदिन?', *सोशल टेक्स्ट,* अंक 56, ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस.

[14] आदित्य निगम (2005), 'सिविल सोसायटी ऐंड इट्स अंडरग्राउंड : एक्सप्लोरेशंस इन द नोशन ऑफ़ पॉलिटिकल सोसायटी', राजीव भार्गव एवं हेलमूट राइफ़िल्ड (सम्पा.), *सिविल सोसायटी, पब्लिक स्फ़ियर ऐंड सिटीज़नशिप : डॉयलॉग्ज़ ऐंड पर्सेप्शंस,* सेज, नयी दिल्ली.

इस तरह लोकधर्मिता की यह संगठित प्रवृत्ति हिंदू राष्ट्र के आग्रहों से अछूती नहीं रह गयी है। उदाहरण के लिए दिल्ली के उत्तर-पूर्वी इलाक़े में काँवड़ के आयोजन में लगी सेवा समितियाँ वर्ष के शेष समय में राम कथा के आयोजन से लेकर आसाराम बापू सरीखे कथावाचकों के प्रवचनों आदि के आयोजन में भी व्यस्त रहती हैं। आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य की मूल प्रतिज्ञाएँ जैसे समानता, व्यक्ति की गरिमा आदि इस धार्मिक विश्व-बोध के ख़िलाफ़ जाती हैं।

काँवड़ की तीर्थयात्रा ने जिस राजनीतिक पर्यावरण में इस जन-परिघटना का रूप लिया है उसमें पिछले तीन दशकों से हिंदूवादी प्रक्रिया और शक्तियाँ लगातार वर्चस्व की लड़ाई लड़ती आ रही हैं। नवें दशक में उभरी लोकतंत्र की दूसरी लहर या राजनीतिक मौन क्रांति[15] ने चुनावी राजनीति में ऊँची जातियों के वर्चस्व को निर्णायक ढंग से चुनौती भी दी है जिसके परिणामस्वरूप आज वह सत्ता पर एकछत्र ढंग से नियंत्रण करने की स्थिति में नहीं रह गयी हैं। परंतु बृहत्तर स्थिति को सामने रखें तो यह आसानी से देखा जा सकता है कि निम्न और मध्यवर्ती जातियों के राजनीतिक सशक्तीकरण से उच्चवर्गीय हिंदू सार्वजनिक संस्कृति का दायरा संकुचित नहीं हुआ है। इसके उलट इस दरमियान धर्म की सामूहिक अभिव्यक्ति लगातार हिंदूवादी बहुसंख्यकता से आक्रांत होती गयी है। मसलन, एक बार जब भाजपा ने काँवड़ को राज्याश्रय देने की भूमिका तैयार कर दी तो कांग्रेस के सामने उसे ज़ारी रखने के अलावा कोई और विकल्प नहीं रह गया था। हिंदू राजनीतिक समाज को वह नाहक नाराज़ करने का जोखिम नहीं उठा सकती थी।

सामाजिक पूँजी और आर्थिक वर्चस्व के बल पर इस हिंदूवादी बहुसंख्यकता ने आस्था के सहज और स्वत:स्फूर्त रूपों को अपनी सत्ता आकांक्षा का वाहक बनाया है। बहुसंख्यकता के ये आग्रह स्थानीय स्तर की राजनीतिक गोलबंदी के रूप में सामने आते हैं। काँवड़ की तीर्थयात्रा में इस प्रवृत्ति का हस्तक्षेप लगातार बढ़ा है। ग़ौर करने की बात है कि काँवड़ शिविरों को सरकारी सहायता उपलब्ध कराने की माँग हज़ यात्रा के हवाले से[16] उठायी गयी थी और 1995 में दिल्ली सरकार द्वारा काँवड़ के लिए सहायता देने की माँग इसी के बाद स्वीकार की गयी थी। एक अर्थ में यह बहुसंख्यकता के दावे को स्वीकार करना और हिंदूवादी दबावों को वैधता देना था। लेकिन इसके बावजूद काँवड़ की तीर्थयात्रा को केवल हिंदूवादी राजनीति की परियोजना के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। यात्रा जो दायरा रचती है वह काफ़ी हद तक खुला है। पर धीरे-धीरे इसे हिंदुत्व की संस्कृति घेरने लगी है। समाज का वर्चस्ववादी पारम्परिक नेतृत्व लोकधर्मिता को हिंदुत्व का रूप देने के लिए एक स्थायी सांस्कृतिक-राजनीतिक रणनीति बनाने में लगा रहा है। पर लोकधर्मिता की परिघटना अपने आप में हिंदूवादी आग्रहों से ग्रस्त नहीं है। अत: काँवड़ के आयोजन और उसके प्रबंधन पर एक विहंगम दृष्टि डालने से जो नक़्शा उभरता है वह द्वंद्व और द्वैध का है। यहाँ अगर विशुद्ध लोकधर्मिता भी सक्रिय है तो धीरे-धीरे उसे हिंदुत्ववादी विचारधारा भी घेरने में लगी है।

उत्तर-पूर्वी दिल्ली की काँवड़ सेवा समितियों के इस अध्ययन से दो ख़ास प्रवृत्तियाँ उभरती हैं।

---

[15] लोकतंत्र की दूसरी लहर नवें दशक में चुनावी राजनीति में दलितों, पिछड़ी जातियों, महिलाओं तथा विभिन्न वर्गों की व्यापक भागेदारी और निर्णायकता ज्ञापित करती है. क्रिस्तॉफ़ जैफ़रलॉ इस परिघटना को एक मौन क्रांति की संज्ञा देते हैं और इसे इस लिहाज़ से विलक्षण मानते हैं कि सत्ता की संरचना में यह व्यापक परिवर्तन हिंसा के बिना सम्भव हुआ है. मुख्यत: मण्डल आयोग की सिफ़ारिशों से उपजी यह प्रक्रिया केवल अन्य पिछड़े वर्गों तक सीमित नहीं थी. एक प्रवृत्ति के तौर पर इसका दीर्घकालिक महत्त्व इस तथ्य में भी निहित है कि चुनावी राजनीति में मौजूदगी दर्ज करने के साथ इन समुदायों की सामाजिक दृश्यमानता भी बढ़ी है। देखें, क्रिस्तॉफ़ जैफ़रलॉ (2003), *इण्डियाज़ साइलेंट रेवल्यूशन,* परमानेंट ब्लैक, नयी दिल्ली.

[16] राजाराम भादू (2009), *धर्म सत्ता और प्रतिरोध की संस्कृति,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली : 212.

ज़्यादातर समितियाँ वैश्य समुदाय की पहल पर गठित की गयी हैं। उनका नियंत्रण और प्रबंधन इसी समुदाय के सदस्य करते हैं। समुदाय के लिए काँवड़ियों की सेवा करना या आसाराम बापू के प्रवचन कार्यक्रम का आयोजन करना लगभग एक जैसे काम हैं। वे इसे धर्म सेवा की हिंदू परम्परा से जोड़ कर देखते हैं। इन्हीं के बीच एक समूह है जो इसे जनजागरण की प्रक्रिया के रूप में देखने का आग्रह करता है। उग्रसेन काँवड़ सेवा समिति का प्रबंधन इसे स्पष्ट रूप से समाज के कमज़ोर भाइयों के हिंदू धर्म से लगातार जुड़ते जाने की घटना मानना चाहता है पर काँवड़ की परिघटना को मुख्यतः हिंदूकरण की प्रक्रिया नहीं माना जा सकता। कई समितियों में गोलवलकर के चित्र ज़रूर देखे जा सकते हैं पर इसे सामान्य प्रारूप नहीं माना जा सकता।

संदर्भ

पीटर मैनुएल (1993), *कैसेट कल्चर,* ऑक्सफ़ॅर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

क्रिस्तॉफ़ जैफ़रलॉ (2003), *इण्डियाज़ साइलेंट रेवल्यूशन,* परमानेंट ब्लैक, नयी दिल्ली.

राजाराम भादू (2003), *धर्मसत्ता और प्रतिरोध की संस्कृति,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.

रुस्तम भड़ूचा (1993), *अ क्वेश्चन ऑफ़ फ़ेथ,* ऑरिएंट लांगमैन, नयी दिल्ली.

पार्थ चटर्जी (2004), *पॉलिटिक्स ऑव द गवर्न्ड,* परमानेंट ब्लैक, नयी दिल्ली.

प्रभाष जोशी (2003), *हिंदू होने का धर्म,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.

थॉमस ब्लॉम हैनसन (1999), *सैफ़रॅन वेव : डेमॉक्रैसी ऐंड हिंदू नैशलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

आदित्य निगम (2005), 'सिविल सोसायटी ऐंड इट्स अंडरग्राउंड : एक्सप्लोरेशंस इन द नोशन ऑफ़ पॉलिटिकल सोसायटी', राजीव भार्गव एवं हेलमूट राइफ़िल्ड (सम्पा.), *सिविल सोसायटी, पब्लिक स्फ़ियर ऐंड सिटीज़नशिप : डॉयलॉग्ज़ ऐंड पर्सेप्शंस,* सेज, नयी दिल्ली.

योगेंद्र यादव (2000), 'अंडरस्टैंडिंग द सेकंड डेमॉक्रैटिक अपसर्ज : ट्रेंड्स ऑव बहुजन पार्टिसिपेशन इन इलेक्टोरल पॉलिटिक्स इन द नाइंटीज़', फ्रांसीन आर फ्रैंकेल, ज़ोया हसन, राजीव भार्गव एवं बलवीर अरोड़ा (सम्पा.), *ट्रांसफ़ॉर्मिंग इण्डिया : सोशल ऐंड पॉलिटिकल डायनैमिक्स ऑफ़ डेमॉक्रैसी,* ऑक्सफ़र्ड युनिवसिर्टी प्रेस, नयी दिल्ली.